इन्द्रप्रस्थ भारती

साहित्य-संस्कृति की समग्र त्रैमासिकी

वर्ष-21, अंक : 1-2, जनवरी-जून, 2009 (संयुक्तांक)

सहायक सम्पादक
निशा निशांत

सम्पादकीय सहयोगी
अजय कुमार शर्मा

सम्पादकीय कार्यालय
हिन्दी अकादमी, दिल्ली
समुदाय भवन, पदम नगर
दिल्ली 110007

फोन : 011-23693118, 23694562, 23690274
फैक्स : 011-23696897
ई-मेल : hindiacademydelhi@gmail.com

परिकल्पना और अन्तः सज्जा : **महेश्वर**
आवरण चित्र : **तैयब मेहता** (महिषासुर, 1992)
साभार : **ललित कला अकादेमी**, नई दिल्ली
रेखांकन : **शुकदेव श्रोत्रिय**
कविताओं के रेखांकन : **पन्ने कुँवर बच्छावत**
अक्षर संयोजन : **कुसुम मिश्र**

मूल्य : एक अंक 25 रुपये
इस अंक का मूल्य : ५० रुपये
वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपये
वार्षिक सदस्यता शुल्क **सचिव, हिन्दी अकादमी, दिल्ली** के नाम देय।

© सर्वाधिकार सुरक्षित
इस पत्रिका में व्यक्त विचार रचनाकारों के अपने हैं।
इनसे अकादमी की नीतियों और विचारों का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

उमाशंकर चौधरी / 177
मृत्युंजय प्रभाकर / 179

गजलनामा
खुरशीद अकबर / 183

अन्तर्वार्ता
उदय प्रकाश पटकथा और साहित्य अलग-अलग हैं / 190

भाषान्तर
मैथिली : गंगेश गुंजन जड़ें / 207
तेलुगु : वल्लूर शिवप्रसाद पद्दालू (भाषान्तरकार : डॉ. के.वी. नरसिंह राव) / 217
मलयालम : के. सचिदानन्दन एक ही भाषा नहीं (भाषान्तरकार : व्योमेश शुक्ल) / 226

रूपान्तर
भर्तृहरि की कविताएँ (रूपान्तरकार : पंकज चतुर्वेदी) / 233

जीवन रेखा
मीरा मिश्र बावली, पंडीजी / 242

नटरंग
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जगर मगर अँधेर नगर (संयोजन : अलखनन्दन) / 252

शोध
अजय मिश्र हिन्दी का प्रथम अभिनीत नाटक : कुछ नए तथ्य / 268

पुस्तकायन
अजित कुमार कविवर बच्चन के साथ / 272

लोकायन
महेन्द्र राजा जैन लोकगीतों की परम्परा / 285

परिसर
उदयन वाजपेयी विस्फारित नयन जगन्नाथ / 292
सत्यदेव त्रिपाठी आज का हिन्दी रंगकर्म और लोक का आलोक / 294
सुभाष शर्मा चार्ली चैप्लिन : जीवन एवं कथा दृष्टि / 301
महेश्वर इतिहास की क्रूर करुण तस्वीरें / 314
रंजन राय एक कलाकार की अन्तर्यात्रा / 320

पुस्तक वार्ता
सुरेन्द्र तिवारी नाट्य संसार : पढ़ते सुनते देखते /324
नूतन पाण्डेय रूसी हिन्दी व्यतिरेकी व्याकरण की समझ /328

आपकी पाती / 332
रचनाकारों के पते / 335

रंजन राय

एक कलाकार की अन्तर्यात्रा

(अमरेश कुमार नई पीढ़ी के समकालीन कलाकारों में अत्यन्त महत्वपूर्ण नाम है। ये मूलतः मूर्तिकार हैं जिनकी कृतियाँ वैचारिक आभा से युक्त हैं। इन्होंने *कला एवं शिल्प महाविद्यालय*, पटना से शिक्षा प्राप्त की है। इनकी अनेक राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में हिस्सेदारी हुई है और अनेक सम्मान भी प्राप्त हुए हैं। श्री रंजन राय ने उनके सृजन कर्म पर बात की है। प्रस्तुत है उसका सम्पादित अंश —सम्पा.)

सच है! ठहरी हुई नदी में वक्त की गर्द, परत-दर-परत उसे अतीत का आईना बना देती है और अन्तराल में विषाक्त काला पानी मात्र अवशेष रह जाता है, तब नदी अपने आस-पास कड़वाहट या अवसाद ही बिखेर पाती है।

अविरल, कल-कल छल-छल करती, गुनगुनाती बहती निर्मल धारा चाहे-अनचाहे कितने फूल खिला जाती, जीवन का संगीत सुना जाती है। बड़े धैर्य से अपनी राह खुद बना लेती है। फिर प्रकृति भी उसकी समृद्धि में कोई कसर नहीं छोड़ती, कोई छोटा-मोटा ताल-तलैया भी आ मिलता है, चञ्चल-अल्हड़ सभी नदियाँ मिलन के गीत गाती चल पड़ती हैं, पी के मिलन को; और जा मिलती हैं असीम से— बहना अर्थात् गतिशीलता अर्थात् अपने सतत् प्रयत्न, निरन्तर अभ्यास, गहरे और गहरे गोते लगाते रहते हैं।

ऐसे ही व्यक्तित्व का शिल्पकार है अमरेश कुमार। भोजपुर (बिहार) का जगदीशपुर, जो वीर कुँवर सिंह का गाँव है, वहाँ से दस किलोमीटर दूर पीरो थाना में एक गाँव है हाटपोखर, इसी गाँव में जन्मे श्री अमरेश। कोमल मिट्टी हो या सख्त पत्थर हो या धातु, ये सारे माध्यम अमरेश के हाथों से ही गुजर कर एक कशिश पैदा करने वाली आह्लादित और शान्त, शून्यता का एहसास कराने वाली कला-कृतियों में ढल जाते हैं। यूँ तो हम दोनों की जान-पहचान लगभग डेढ़-दो दशक से है। कई बहुमूल्य क्षणों में मैंने अमरेश को करीब से महसूस किया है— जैसे कोई मासूम बालक 'किचन' से मक्का, कद्दू, कोहड़ा, ईमली आदि का बीज मिट्टी में डाल प्रतिदिन उस स्थान को देखता है और स्फुटित हो अंकुरित होता है तो मासूम करतल ध्वनि करता परम सुख को प्राप्त करता है। यह आनन्द दिन-ब-दिन बढ़ता ही जाता है। कभी कोमल कली उगते देख, कभी पंखुड़ियों का रंग देख तो कभी पुष्प की खुशबू में आत्मविभोर हो जाता है। सृजन का यही नशा सर्जक को कुछ-न-कुछ रचने को विवश कर देता है।

विगत दिनों राष्ट्रीय ललित कला अकादेमी (दिल्ली) द्वारा आयोजित टेरा काटा शावर तरुमित्र, पटना (बिहार) में पहली बार सम्पन्न हुआ। वहीं हमारी मुलाकात काफी दिनों बाद अमरेश एवं अन्य शिल्पियों से हुई। यूँ तो सभी अपने आप में अनोखे थे परन्तु अमरेश की कलाकृति हजारों चावल के दानों में ढलकर एक शीशे की जारनुमा आकृति में दृष्टिगोचर हो रही थी जो सबों से हटकर लगी। बरबस मैंने पूछ लिया–

'लगता है कोई खास बात है जो आपने चावल के टेराकोटा वोइजाम (शीशे का जार)की शक्ल में इकट्ठे किए हैं?...लगता है, चावल से आपको ज्यादा ही लगाव है।

कृति को निहारते हुए अमरेश सहज मुस्कान के साथ कहते हैं, 'क्यों नहीं हो लगाव, होना स्वाभाविक भी है। मैं चावल उपजाने वाले क्षेत्र से हूँ। चावल की सदा से हिन्दुस्तान में समृद्ध परम्परा रही है, चन्दन तिलक में, अक्षत के रूप में चावल का प्रयोग, अरिपन में चावल के घोल का प्रयोग, सुदामा अपने बाल सखा श्री कृष्ण से मिलने द्वारिका चले तो सन्देश के रूप में चावल ही ले गए थे। पाण्डवों के वनवास के दौरान ऋषियों के समूह जब द्रौपदी की कुटिया में दिन का भोजन करने की इच्छा व्यक्त कर नदी स्नान करने को चल दिए तो द्रौपदी थोड़ा चिन्तित हो गई। एक साथ इतने ऋषियों की भोजन व्यवस्था, अल्प समय में कठिन थी तो उसने मन में योगेश्वर, श्री कृष्ण का ध्यान किया, तब योगेश्वर कृष्ण ने द्रौपदी के असमञ्जस को भाँप हाँड़ी में चावल का एक दाना ग्रहण कर ऋषियों को तृप्त कर दिया था।'

इस बीच हम लोग तरुमित्र के मनमोहक वन में विचरते रहे। यहाँ के खुशगवार माहौल में मैंने चाय की इच्छा व्यक्त की, फिर लम्बे-लम्बे बाँस के झुरमुट के नीचे 'ग्रास टी' की प्याली के साथ बैठ गए–

हाँ तो आप चावल महिमा बता रहे थे। 'मालूम है! एक बार मैंने बाबा (दादा) से पूछा था आप दोनों वक्त चावल क्यों खाते हैं? उन्होंने बताया– पहले यहाँ गेहूँ नहीं होता था। आज भी आम आदमी का चाहे वह बिहार का हो या झारखण्ड, उड़ीसा, बंगाल का, यहाँ का मुख्य भोजन चावल ही है। तभी तो सभी राजनीतिक पार्टियाँ दो किलो चावल उपलब्ध कराने की बात एजेण्डा में रखती हैं। यह जो समय है उसमें चावल से वोट माँगे जाते हैं, संसद चावल पर टिकी है। पुरातन परम्परा से आज तक चावल ही समृद्धि का प्रतीक है।

चावल को वोइजाम (शीशे का जार) की आकृति में प्रदर्शित करने का तात्पर्य चावल को महत्वपूर्ण अथवा बाजारवादी परम्परा के अतिक्रमण से है। किस तरह आज सुलभ खाद्य शो पीस बन रहा है और एक आम आदमी की पहुँच से किस तरह दूर होता जा रहा है चावल।'

ये जवाब अमरेश के थे। मैं अमरेश जी को अपलक देखता रहा। अमरेश और उनकी कृति। हमेशा सहज मुस्कुराता रहने वाला यह शिल्पकार अन्दर से समाज के प्रति, परम्पराओं के प्रति, समृद्धि के प्रति कितना सजग है! गम्भीर है। तरुमित्र के खुशगवार माहौल में अचानक इतना गम्भीर मैं नहीं होना चाहता था। मैंने ग्रास टी का अन्तिम घूँट लिया और उनसे अपने व्यस्त-वक्त से थोड़ा-सा समय निकालने का अनुरोध किया। प्रस्तुत है मुलाकात की एक शाम– बिहार ललित कला अकादमी के प्रांगण में अस्थायी तौर पर अमरेश का स्टूडियो है। औपचारिकता के उपरान्त हम दोनों गुलमर्ग के वृक्ष से छनकर आती चाँदनी में बैठ गए।

हाँ! तो क्या पूछ रहे थे आप?– अमरेश! समकालीन परिप्रेक्ष्य में शिल्प या वस्तु शिल्प का भविष्य क्या है?

'उज्जवल है! आजकल बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ बन रही हैं जिनमें म्यूरल, मोनुमेन्टल मूर्तियों को स्थान मिल रहा है। आज अधिकांश प्रतिष्ठित चित्रकार अपने आपको सम्पूर्ण करने

के लिए, दर्शाने के लिए अपनी प्रदर्शनी में मूर्ति (शिल्प)रखते हैं। इसे प्रदर्शित करने की परम्परा ही चल पड़ी है। आज हर कलाकार अपने आपको अग्रणी कलाकार कहलाने के लिए 'इन्स्टालेशन' आर्ट कर रहे हैं, जो त्रिआयामी स्वरूप में है। अत: इससे आप अन्दाजा लगा सकते हैं कि मूर्ति शिल्प का समकालीन परिवेश में क्या भविष्य है? पर! मूर्तिकार को, अपने आपको स्थापित करने में कई व्यावहारिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जैसे; स्पेस, स्टूडियो, कलाकृतियों का संग्रह इत्यादि।'

मधुर कटाक्ष के साथ मूर्तिकार की वेदना को व्यक्त किया अमरेश ने।

उपभोक्ता और बाजारवाद, नवोदित, उपेक्षित और शोषित कलाकरों के सन्दर्भ में मैंने उत्सुकता से पूछा, 'जहाँ एक ओर नामी-गिरामी चर्चित शिल्पियों, कलाकारों की कलाकृतियाँ करोड़ों में बिक जाती हैं वहीं नवोदित कलाकार, शिल्पकार परिस्थिति से जूझते हुए अपनी राह बदल लेने को मजबूर हो जाते हैं; इसका जिम्मेदार कौन है?...सरकार...स्वयं कलाकार या समकालीन समाज?'

'आज प्रतिष्ठित कलाकारों को भी चाहिए कि नवोदित कलाकारों की मदद करें, केवल आर्थिक मदद ही मदद नहीं होती।'

बड़ी सरलता से सृजनधर्मी अमरेश ने सुलझे शब्दों में सामयिक उत्तर दिया और मैं उनके साथ-साथ गहरे अनुभव के सागर में गोते लगाने लगा। प्रश्नों की तरंगें विभिन्न कोणों से उभरने लगीं और यह था मेरा तीसरा सवाल–

'सृजनात्मक एवं आकृतिमूलक आप दोनों तरह के शिल्प गढ़ते हैं परन्तु किस तरह की कृति रचने के बाद आप ज्यादा सुख का अनुभव करते हैं?'

'देखिए दोनों तरह की रचनाओं की आन्तरिक प्रक्रिया अलग-अलग तरह की होती है। आकृतिमूलक से आशय यही है न! आदमकद आकृति तो आकृतिमूलक आकृति रचना करने के लिए बिम्ब स्पष्ट होते हैं, यह किसी के द्वारा दिए गए विषय होते हैं।

दूसरी तरफ सृजनात्मक कार्य में आन्तरिक द्वन्द्व चलता रहता है। जब तक रचना प्रक्रिया पूरी न हो जाए तब तक यह द्वन्द्व अन्दर-बाहर, भौतिक एवं आध्यात्मिकता का तारतम्य बैठाने का होता है। इस प्रक्रिया में कलाकृतियाँ कई नए-नए बिम्बों में बनती-बिगड़ती और मिटती रहती हैं और अन्तत: एक कलाकृति बन जाती है, तब जाकर सुखद अनुभव होता है। एक सुकून भरी तृप्ति मिलती है।'

मैं अक्सर अमरेश की कलाकृतियाँ देख-देख आत्म-विभोर होता था परन्तु समझ नहीं पाता था कि इन कृतियों की प्रेरणा अमरेश को कहाँ से मिलती है जो सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक आदि अमूल्य सम्वेदनाओं को अपनी कृति में पिरो देते हैं, जैसे– अर्घ्य। बिहार और उत्तर प्रदेश में प्रचलित सूर्य-उपासना (छठ) उगते सूर्य और डूबते सूर्य को लोटे में दूध से अर्घ्य देते हैं और उसी को तीन फीट ऊँची-लम्बी काँस्य लोटे में सृजित किया गया है, यूँ ही जल-कुण्ड दो फुट त्रिज्या वाली वृत्तनुमा सैण्ड स्टोन, गोलाकार की बाहरी सतह चिकना शीर्ष पर हड़प्पा और मोहन-जोदड़ो, मौर्य तथा गुप्तकालीन भग्नावशेषों की पूरी शृंखला जैसे पत्थरों पर मूर्तिमान पूरा इतिहास हो। गोले को खोखला कर कुण्ड बनाया और उस कुण्ड में स्नान करती दो-तीन मानवाकृतियाँ जो बरबस बनारस के गंगा घाट की याद दिला जाती हैं। ऐसा एक शिल्प है गर्भ गृह; जिसे देख ध्यानी ध्यान की गहराई में उतर जाते हैं।

आज महसूस हो रहा था, सृजन धर्मियों की अन्तर्यात्रा कई कालों को लाँघ जाती है। मैं तत्क्षण वर्तमान काल में लौटा और एक सवाल उभरा, 'आजकल आप शिल्प के साथ-साथ

कैनवस भी रंग रहे हैं? यह अन्दर की चाहत है या अपने आपको सम्पूर्ण बताने का प्रयास जो आज तथाकथित एक प्रचलन-सा बन गया है–

'यह आज की नहीं बल्कि मेरी पहली चाहत थी जिसे परिस्थितिवश अचानक बदलना पड़ा और अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का माध्यम मिट्टी को चुनना पड़ा। जो सहज रूप में बिहार में हर तरफ मौजूद है। मैंने सोचा!...कम-से-कम इससे कार्य तो निरन्तर होता रहेगा। यूँ तो मैं कला महाविद्यालय में पेन्टिंग में दाखिला ले चुका था परन्तु आर्थिक दृष्टिकोण से सोचते हुए अपना विषय शिल्प को चुना।'

अब तक काफी समय बीत चुका था– 'अच्छा! तो अब इजाजत दीजिए। सहयोग के लिए धन्यवाद!' इतना कहते हुए मैं उठ खड़ा हुआ।

'रंजन जी! हम लोग रात्रि भोजन साथ करेंगे।' मैंने मना करना चाहा तो वे बोले– 'इतना तो, कमा ही लेता हूँ कि मित्रों का, अतिथियों का स्वागत आराम से कर सकता हूँ।'

फिर हम दोनों बाजार से खाने-पीने का सामान लेकर राजेन्द्रनगर ओवर ब्रिज के निकट उनके फ्लैट में पहुँचे।

दर्पण जितना साफ होता है प्रतिबिम्ब भी उतना ही स्पष्ट दिखता है, सुन्दर दिखता है। सम्वेदनशील आदमी का हृदय दर्पण-सा होता है, उसके आस-पास का माहौल समाज, प्रकृति आदि शीघ्र प्रभावित करती है। वैसा ही प्रतिबिम्ब मानस-पटल पर बनता है जैसी भावना होती है। अमरेश का फ्लैट देख ऐसा लगा मैं मूर्तिकार अमरेश से नहीं चित्रकार अमरेश से मिल रहा हूँ। परन्तु इनके बड़े-बड़े कैनवस पर स्पष्ट रूप से इनके मूर्तिकार होने का प्रमाण दीख रहा था। एक पेन्टिंग पर सर कटा गाँधी (बापू) जो आदमकद कांस्य मूर्ति का अधूरा स्वरूप था। साथ में आधुनिक उपकरण– गैस सिलेण्डर और बत्ती, जो मूर्तियों को जोड़ने (वेल्डिंग) के काम आते हैं। इसके साथ पूरे कैनवस में जन-जीवन से जुड़े पदार्थ की आकृति जैसे ताला, नट, बोल्ट, ग्लास, चम्मच, घण्टी, घुँघरू और सबसे प्यारी लग रही थी, सुनहरे रंगों में एक बचपन कजरौटी (अञ्जन रखने का नन्हा-सा पात्र) बैक ग्राउण्ड में खास, काली राख या अँधेरी रात, नहीं। अतीत को वर्तमान से जोड़ दिया अमरेश ने, बापू (महात्मा गाँधी) किस तरह से अध्यात्म से, गति से, अहिंसा, बचपन से, मानवतावाद से जुड़े थे परन्तु आज गाँधी विचार, सरकटी गाँधी की प्रतिमा है। हिंसा-ही-हिंसा है चहुँ ओर। दूसरी पेन्टिंग में– नीला आकाश और क्रेन से लटकती किसी महापुरुष की आदमकद आवरण में ढकी प्रतिमा– किसी तरह किसी महापुरुष का 'स्टेच्यू' स्थापित कर उसे आसमान से जोड़ दिया जाता है।

तीसरे बड़े कैनवस पर बीस छोटे-छोटे वर्गाकार अलग-अलग खानों में काम करते क्षण और तमाम उपकरण जो एक मूर्ति को रचने में उपयोग में आते हैं। इन तस्वीरों के पीछे पारदर्शित होते बापू (महात्मा गाँधी) की प्रतिमा। कितनी मशक्कत के बाद हमारे सामने खड़ा करते हैं शिल्पकार।

अमरेश और उनकी पेन्टिंग ये सारे भाव बता रही थीं। मुझे लगा जो अभिव्यक्ति शिल्प में नहीं हो पाती है वह अधूरी चाहत, एक तड़पन, अधूरी अभिव्यक्ति की पेन्टिंग बनाकर अमरेश सम्पूर्णता की ओर अग्रसर हैं। अभी निर्मित तस्वीरें स्थूल मात्र हैं, इसमें शिल्प-सी नैसर्गिकता नहीं आ पाई है, अमरेश की अन्तर्यात्रा एक दिन खुद-ब-खुद सम्पूर्णता को अवश्य प्राप्त करेगी। बूँद मिलेगी सागर से, असीम के साथ खाने के बाद, भारतीय संस्कृति, सभ्यता और कला के इस पुजारी को नमस्कार कर विदा ली। शुभ यात्रा!